Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
ISSN : 2582-0095
doi : https://doi.org/10.32628/GISRRJ

पुराणों का दर्शन

डा0 अराधना उपाध्याय
पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, महन्थ रामाश्रयदास स्नाकोत्तर महाविद्यालय, भुड़कुड़ा, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Article History
Accepted : 20 Sep 2024
Published : 05 Oct 2024
Publication Issue :
Volume 7, Issue 5
September-October-2024
Page Number : 60-65

शोधसारांश– ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति को भी श्रीमद्भागवत नित्य मुक्त' माना गया है। आत्मादर्शी व्यक्ति प्राकृति पुरूष विवेक से मुक्ति का सहज अधिकारी कहा गया है। द्वितीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय में सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का आधार साधना वैषम्य को बताया गया है। अन्त में ''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' का समथ्रन करते हुए स्पष्ट रूप में कहा गया है कि भक्ति की उत्पादिका निस्पृहता ही मुक्ति प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है।

मुख्य शब्द– पुराण, दर्शन, आत्मदर्शी, क्रममुक्ति, सद्योक्ति, भक्ति, उत्पादिका।

भारतीय दर्शन का आदिस्रोत भी वेद ही है। पश्चिमी देशों में धार्मिक गूढ़ रहस्य से परिपूर्ण शास्त्र को 'फिलॉसफी' कहते हैं। यह शब्द ''फिलास'' और ''सोफिया'' दो ग्रीक शब्दों से बना है, जिनका अर्थ क्रमशः प्रेम और विद्या है। अर्थात् किसी भी धार्मिक या सामाजिक विषय का ज्ञान प्राप्त करने की रूचिकर विद्या ही 'फिलॉसफी' है। इसके विपरीत भारत में इसे 'दर्शन' (दृश्यन्ते अनेन इति दर्शनम्) कहा गया है, जिसका भाव है धार्मिक तत्वों को अनुरागपूर्वक देखना नहीं अपितु अनुभव, अन्तर्ज्ञानीय शक्ति, मनन और चिन्तन द्वारा धार्मिक तत्वों के आभ्यन्तर स्वरूप को देखना है। भारतीय तत्ववेता मनीषियों ने ब्रह्मा, जीव, माया और जगत् के रहस्य को भली–भाँति देखा–परखा है।

विश्व में आदिम ज्ञान का स्रोत 'वेद' को माना जाता है। उसके दो भाग है – (1) मन्त्र, तथा (2) ब्राह्मण। मन्त्रों में देवताओं की स्तुति की गई है और ब्राह्मणों में कर्मकाण्ड (यज्ञादि) का ज्ञान निहित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् रचित 'आरण्यक' ग्रन्थों में वानपस्थाश्रम के उपयुक्त योगाभ्यास की विधियों का वर्णन है। उपनिषद् वैदिक–साहित्य के अन्तिम भाग है, अतः वेदान्त संज्ञा से अभिहित होते हैं और 'वेदान्त–दर्शन' के आदिस्रोत माने जाते हैं। ये वास्तव में ऐसे निबन्ध है, जिनमें मानवीय भावना अत्युच्च शिखर पर पहुंची हुई प्रतीत होती है और चिन्तन की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। इनके मंत्रों की व्याख्या विभिन्न प्रकार से कर विभिन्न मतों के विभिन्न सिद्धान्तों का सूत्रपात हुआ है।

वेदान्त दर्शन से चार दार्शनिक विचारधारायें प्रस्फुटित हुई है। आचार्य शङ्कर का निर्विशेषाद्वैत, रामानुजाचार्य का विशिश्ष्टाद्वैत, श्री बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत और श्रीमध्वाचार्य का द्वैत। जीव, ब्रह्मा,

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

संसार, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में इन सबने उपनिषदों के विभिन्न सूत्रों को अपनाकर अपनी विचारधारा को पुष्टि प्रदान की तथा विभिन्न क्षेत्रों को उससे प्रभावित किया।[1]

वैष्णव संहिताओं में भी जो उपरोक्त सिद्धान्तों पर आधारित थी, दार्शनिक तत्वों का निरूपण हुआ है। इनमें विशेषकर–ब्रह्मा और जीव का सम्बन्ध, मुक्ति, क्रियाकलाप–अर्थात् मन्दिरों का निर्माण, मूर्ति स्थापना, पूजन आदि एवं नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्य, पूजन–विधि, उत्सवादि का विवेचन हुआ है। इनके अनुसार भव से मुक्ति का परम साधन शरणागति और भगवत् कृपा ही है।[2]

इन सभी सिद्धान्तों में सर्वाधिक प्रभाव श्री शङ्कराचार्य के अद्वैत का ही पड़ा जिसके निरसन के लिए वैष्णवाचार्यों तथा अन्यान्य वैष्णव भक्तों ने श्रीमद्भावगत को आधार[3] बनाकर द्वैताद्वैत के झमेले से टक्कर लेने के लिए 'भक्ति'–सिद्धान्त को सर्वोपरि मान्यता दी और उसे ही संसारचक्र से मोझ दिलाने वाला परम साधन स्वीकार किया। यद्यपि श्रीमद्भागवत में 'भक्ति' का ही प्राद्यान्य है और उसी का निरूपण हुआ है तथापि जीव, ब्रह्मा, माया, संसार, मुक्ति आदि का भी पर्याप्त विवेचन हुआ है।

1. **श्रीमद्भागवत के दार्शनिक सिद्धान्त –** महाभारत में नैष्कर्म्य प्रधान धर्म का निरूपण करने पर भी जब व्यासजी को आत्मशान्ति नमिली तब श्री नारदजी की प्रेरणा से उन्होंने भक्तिपरक श्रीमद्भावगत की रचना की।[4] यद्यपिश्रीमद्भगवत के अन्तःसाक्ष्य के अनुसार उसकी रचना का उद्देश्य उपरोक्त ही है, तथापि इसके अध्ययन और अन्तःसाक्ष्य से यह भली–भाँति विदित हो जाता है कि श्रीमद्भागवत में परम हंसों के सर्वश्रेष्ठ माया के लेश रहित ज्ञान, नैष्कर्म्य विधायक ज्ञान, वैराग्य तथा भगवदनुग्रह कारिणी भक्ति तीनों का ही एकत्र वर्णन हुआ है।[5]

गरूडपुराण में पुराण गणना प्रसङ्ग में श्रीमद्भावगवत के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत के अर्थ का निर्णायक, गायत्री का भाष्य रूप और वेदार्थ का साररूप है।[6] श्रीमद्भागवत का अन्तःसाक्ष्य भी इसे समस्त 'वेदों के तात्पर्य' रूप में मान्यता देता है।[7] इस प्रकार इस सब कथनों से विदित होता है कि श्रीमद्भागवत में दार्शनिक विचारों का भी यथास्थान प्रतिपादन और विवेचन हुआ है।

श्रीमद्भागवत के आदिम श्लोक में सृष्टि, स्थिति, प्रलय के कारण सदूप पदार्थों के अनुगत, असत् पदार्थों से पृथक् स्वतंत्र, स्वयं प्रकाशमान्, ब्रह्मा को सङ्कल्पमात्र से ज्ञान दान देने वाले, त्रिगुणात्मिका मिथ्या प्रकृति को निज अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत कराने वाले माया मुक्त, सत्य रूप परमात्मा तत्व (ईश्वर) का ध्यान किया गया है। इस ध्यान में ईश्वर के दर्शन शास्त्रोंक्त रूप के दर्शन के रूप में होते हैं।[8] दूसरे और तीसरे श्लोकों में इसे क्रमशः नैष्कर्म्य धर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ तथा वेद रूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल अर्थात् खाने योग्य रूप को प्राप्त फल कहा गया है।[9] इन तीनों श्लोकों में ही श्रीमद्भागवत का संक्षिप्त दिग्दर्शन और सार निहित है।

श्रीमद्भागवत के वैशिष्टच्य और महत्व का प्रतिपादन मत्स्य,[10] गरूड,[11] स्कन्द,[12] पद्म,[13] आदि पुराणों तथा पाञ्चरात्र संहिताओं में हुआ है[14] और सर्वत्र इसे वेदों का सार कहा गया है। इसमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय दस विषयों का वर्णन हुआ है। दशम तत्व ''आश्रमय'' के यथावत् परिज्ञान के लिए कहीं श्रुति से कहीं तात्पर्य से और कहीं दोनों के अनुकूल अनुभव से महात्माओं ने अन्य नौ विषयों का अतीव सुगम रीति से वर्णन किया है।[15] इन विषयों के अन्तर्गत ईश्वर, जीव, जगत्, माया आदि की विस्तृत विवेचना इसमें की गयी है।

श्रीमद्भागवत में सर्ग (सृष्टि) का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।[16] श्रीमद्भागवत के अनुसार ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होकर जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्रायें, इन्द्रियाँ अहङ्कार और महत्व की उत्पत्ति होती है, उसे सृष्टि या सर्ग कहते हैं।

भागवत में सर्ग का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है कि ईश्वर की प्रेरणा से सत्त्वादि गुणों में विषमता होना ही इसका स्वरूप है।[17] सर्ग या सृष्टि के दो भेद है – प्राकृत और वैकृत।

प्राकृत सृष्टि के छः प्रकार है –

1. महत्तत्त्व,
2. पञ्चमहाभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय,
3. तन्मात्र वर्ग (पञ्चमहाभूतों का जनक),
4. इन्द्रियाँ,
5. इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता और
6. अविद्या (तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह पाँच गाँठों से युक्त)।

वैकृत सृष्टि तीन प्रकार की होती है –

1. स्थावर वृक्षादि,
2. तिर्यग् योनियाँ (पशु–पक्षी) तथा
3. मनुष्य।

यह सृष्टि रजोगुण की प्रधानतायुक्त होती है। तीसरी सृष्टि सत्तादि रूप वैकारिक देवसर्ग है जो देव, असुर, पितर आदि भेद से आठ प्रकार की है।[18] इसके अतिरिक्त, जिस प्रकार पृथ्वी में अज्ञात रूप से बिखरे हुए बीजों द्वारा चातुर्मास में अनेक प्रकार के लता–गुल्तादि स्वयम् उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार पूर्वतन सृष्टि में विद्यमान जीवों के अवशिष्ट वासनामय कर्मकलाप के संस्कारों से पुनः सृाष्टरचना के समय अनेक भोग्य पदार्थों और उनके भोक्ता प्राणियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार की सृष्टि को श्रीमद्भागवत में प्रतिसर्ग कहा गया है।[19]

सृष्टि में तत्वों का निरूपण और सृष्टि के स्वीकार्य तत्वों के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों का निरूपण श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में विस्तार से हुआ है।[20]

सृष्टि के मूल सृष्ट पदार्थ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि के अधिष्ठान पञ्चमहाभूत है, जो गुणों के क्षोभ से क्रमशः आकाश, उससे वायु, उससे तेज, उससे जल और उससे पृथ्वी के रूप में उत्पन्न होते हैं।[21] पञ्चमहाभूत, इन्द्रिय, मन और तीनों गुणों के संगठन से भोगों के साधन रूप शरीरों की रचना होती है।[22] इनके अतिरिक्त काल, स्वभाव, कार्य, कारण और मन भी सृष्टि के ऐसे साधन हैं जिनके बिना सृष्टि का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता।[23]

सांख्य दर्शन में भी कहा गया है कि प्रकृति से महत्तत्व, उससे अहङ्कार, उससे मन और 10 ज्ञानेन्द्रियॉ, उससे शब्ददादि पाँच तन्मात्रायें उत्पन्न होती है। इनके साथ एक स्वतंत्र पुरूष रूप वस्तु के संयोग से प्राकृत विकार रूप स्थावर–जाङ्गतात्मक विश्व प्रकट होता है। सब पदार्थ उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण या प्रकृति में ही विद्यमान् होते हैं।[24] अतः प्रकृति या ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाने के कारण सृष्टि शाश्वत है।

श्रीमद्भागवत् में भी सृष्टि के सम्बनध में प्रायः ऐसे ही विचार प्रतिपादित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इसमें दार्शनिक क्षेत्र में सृष्टि के सम्बनध में प्रतिपादित आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद तीनों ही वादों के संगतिकारक विचारों का भी प्रतिपादन हुआ है और निष्कर्ष रूप में कहा गया है कि अव्यक्त से व्यक्त होना, एक से अनेक होना, निराकार से साकार होना और सूक्ष्म का स्थूल होना ही 'सर्ग' अथवा 'सृष्टि' है।[25] ब्रह्मा द्वारा रचित सृष्टि को 'विसर्ग' नाम से अभिहित किया गया है।[26] प्रतिपद नाशोन्मुख सृष्टि की

श्रीविष्णु द्वारा विहित यत्किञ्वित स्थिरता, जो असारता में सार की अनुभूति कराती है उसे 'स्थान' कहते हैं।[27]

'स्थान' विषयक ज्ञान तथा संवर्धनार्थ ''पोषक'' संसार के जीवों के लिए ही नहीं सृष्टि की स्थिति और उसके विकास तथा उस विकासकर्ता के परिचय के लिए भी आवश्यक तत्व है। इसे (पोषण को) भागवत में परतत्व का अनुग्रह माना गया है।[28] 'मन्वन्तरों' के इतिहास में सृष्टि के क्रमिक धार्मिक अनुष्ठानों, आचरणों तथा मर्यादाओं का इतिहास अन्तर्हित है, जो सृष्टि के विकास और चेतना का परिचायक है।[29] सृष्टि की विभिन्न योनियों का कारण, आवागमन–चक्र का रहस्य, परमात्मतत्व के भेद रूप जीव के बन्धनगत होने का कारण भागवतकार ने वासनाओं को माना है और उन्हें ऊति (ऊतयः – बहुवचन) से अभिहित किया है।[30]

सृष्टि के मूल रहस्य की परिचायकि, सृष्टि में धर्म और मर्यादा की संस्थापिका, भगवान, भगवद् भक्त आदि कि विभिन्न आख्यानुयुक्त कथायें 'ईशकाथा' कही जाती है।[31]

इस सृष्टि की अन्तिमावस्था है – 'निरोध'। जब भगवान् योगन्द्रिा स्वीकार कर शयन करते हैं, तब जीव अपनी उपाधियों सहित उनमें लीन हो जाता है।[32] इसके पश्चात् फिर सृष्टिचक्र का आवर्तन होता है। ''अज्ञान कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्म भाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थिर होना ही मुक्ति है।[33]

श्रीमद्भागवत में मुक्ति पाँच प्रकार की बतायी गयी है –

1. सालोकय – भगवान् के चिन्मय धाम में निवास करना।
2. सामीप्य – भगवान् के पास रहना।
3. सार्ष्टि – भगवान् के समान ऐश्वग्र प्राप्त कर लेना।
4. सारूप्य – भगवान् के समान स्वरूप प्राप्त कर लेना और
5. साचुज्य – भगवान् में लीन हो जाना।

यद्यपि मुक्ति जीव का अन्यतम प्राप्तव्य और लक्ष्य है तथापि भगवद्–भक्त भगवान् के प्रेम के सामने मुक्ति को सर्वथा हेय ही समझते हैं।[34]

इसके अतिरिक्त ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति को भी श्रीमद्भागवत नित्य मुक्त' माना गया है।[35] आत्मादर्शी व्यक्ति प्राकृति पुरूष विवेक से मुक्ति का सहज अधिकारी कहा गया है।[36] द्वितीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय में सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का आधार साधना वैषम्य को बताया गया है। अन्त में ''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' का समथ्रन करते हुए स्पष्ट रूप में कहा गया है कि भक्ति की उत्पादिका निस्पृहता ही मुक्ति प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है।[37]

सन्दभग्रन्थसूची

1.श्री शङ्कर के निर्विशेषाद्वैत के पोषक उपनिषदीय सूत्र निम्न है –

छान्दोग्य, 6/2/2, केन., 1/3 मुण्डक, 1/1/7, श्वेता., 4/4/8/10, मुण्डक., 2/2/8: वृहदारण्यक., 2/2/4, 4/4/12: ऐतरेय, 5/3: छान्दोग्य., 6/7/8: बृहदा., 1/4/10: माण्डूक्य., 2: शाङ्करभाष्य, 1/1/4

राजानुजाचार्य के प्रेरक सूत्र – श्वेताश्व, 1/22: बृहदारण्यक, 2/192, 3/7: तैत्तिरीय., 2/6: श्वेता., 6/9: मुण्डक, 3/1/3

श्रीबल्लभाचार्यजी ने प्रायः उक्त सभी सूत्रों का सार तथा भागवत द्वितीय स्कन्ध के दशम अध्याय से विचार–सूत्र ग्रहण किये हैं। विशेषकर 'पोषणं तदनुग्रहः 2/10/4 आदि।

2. अहिर्बुध्न्य संहिता, 14/28–32
3. श्रीमद्भागवत, 1/5/8–12, 1/7/6–7 तथा 1/4
4. श्रीमद्भागवत, 12/13/18–19
5. अथोऽयं ब्रह्मासूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
   गायत्री भाष्य रूपोऽौ वेदार्थ परिबृंहितष्च। गरूड़पुराण
6. श्रीमद्भागवत, 11/21/43
7. श्रीमतद्भागवत, 1/1/1
8. श्रीमद्भागवत, 1/1/2–3
9. मत्स्य, 53/21–22
10. गरूड़ भागवत महात्म्य (पुराण गणना प्रसङ्ग)
11. स्कन्द, वैष्णव खण्ड, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, अ. 1–4
12. पद्म, उत्तरखण्ड, अ. 1–6 (श्रीमतद्भागवत माहात्म्य)
13. नारद पाञ्चरात्र की 'ज्ञानामृतसार संहिता' द्वितीय सत्र, अ. 7 तथा 'सात्वत तंत्र द्वितीय पटल,
14. तदैव, 2/10/1–2
15. तदैव, 2/5, 3/5, 10, 11, 12, 23, 2/10, 3/26, 11/12, 12/7/6, 3/10/14–17 आदि।
16. श्रीमद्भागवत, 3/10/14
17. श्रीमद्भागवत, 3/10/13–25
18. श्रीमद्भागवत, 3/10/26–29
19. श्रीमद्भागवत, 12/7/12
20. श्रीमद्भागवत, 11–12
21. श्रीमद्भागवत, 3/5/32–35
22. श्रीमद्भागवत, 2/5/32
23. श्रीमद्भागवत, 2/6/41
24. (अ) पुरूषस्य दर्शनार्थ कैवल्यार्थ तथा प्रधानस्य षंगबन्ध
    वदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।। सां0 का0 21
    असद्कारणादुपादान ग्रहणात् सर्वं सम्भवाभावत् शक्तस्य–
    शक्य कारणात् कारण भावाच्य सत्कार्यम् ।। सा0का0, 9
    (ब) प्रकृतेर्महांस्तत्रोहंकारस्तस्मात् गणश्व षोडशकः।
    तस्मादपि षेाड्शकात् पंचभ्यः पंचभूतानि।। तदेव, 21.
25. श्रीमद्भागवत, 2/10/3
26. श्रीमद्भागवत, 2/10/3
27. श्रीमद्भागवत, 2/10/4
28. पोषणंतदनुग्रहः । श्रीमद्भागवत, 2/10/4
    पोषण की विस्तृत व्याख्या, भागवत, 6/3 में द्रष्टव्य है।
29. भागवत, 2/10/4 ''मान्वन्तरं'' काल परिमाण का नाम है, मानव वर्षों की गणनानुसार 42, 20,000 वर्ष की। चतुर्युगी होती है और 71 चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। भागवत, 8/14
30. श्रीमद्भागवत, 2/10/4

31.श्रीमद्भागवत, 2/10/5
32.श्रीमद्भागवत, 2/10/6 (पूर्वार्द्ध)
33. श्रीमद्भागवत, 11/14/14 तथा 11/20/32–35
34. विद्यामयो यः स तु नित्य मुक्त। श्रीमद्भागवत, 11/11/7
35. श्रीमद्भागवत, 3/27/9–11
36. श्रीमद्भागवत, 11/20/14, 16, 35 आदि
37. गीता, 15